# रमण

रमण करना, जो घटघट में रमण करता है, उसे ईश्वर कहा है। रमण शब्द का भी वही अर्थ है - जो सर्वत्र रमण कर रहा है उसे राम कहते हैं। तो हमने देखना है कि यह रमण करना प्रत्यक्ष है या अप्रयत्क्ष। क्योंकि, व्यवहार के अंदर संसार का काम तो नज़र आता है मगर वैसे कुछ नज़र नहीं आता। मनुष्य का चलना-फिरना, बोलना या जो कुछ भी करता है, यह सब हमें प्रत्यक्ष नज़र आता है।

मगर वास्तव में ईश्वर ही सब के अंदर रमण करता है। पता ही नहीं लगता वह कौन है, कौन नहीं। हमें यह रमण व्यवहार के अंदर देखना होगा कि यह जो मनुष्य उठता बैठता या जो कुछ भी कर रहा है वह इसके अंदर किसकी क्रिया है? जब तक इसका निर्णय नहीं होता तब तक ईश्वर का कुछ पता नहीं चलता। राम, वह जो रमण हम देख रहे सुन रहे, या कुछ भी हम कर रहे हैं। सृष्टि में हर कोई रमण ही तो कर रहा है। यह सृष्टि सारी एक खेल है, रमण खेल को ही कहते हैं। सृष्टि सारी खेल है, एक रमण ही है यह। मगर किसका रमण?

यह देखना है कि वह प्रत्यक्षत: ईश्वर का रमण है। इस दृष्टि के अनुसार। हाथ हिलाते हैं, उठते बैठते हैं, कुछ भी संसार में हम करते हैं। तो काम का ऊपरी करना तो हम देखते हैं, वह भी एक किसम का रमण ही है, मगर वह रमण किसके ज़रिए से हो रहा है? इसके ऊपर हमारी दृष्टि नहीं पड़ती। क्योंकि, इसके अंदर एक चेतन-शक्ति ऐसी है जो सबके अंदर रमण कर रही है। पशु-पक्षी, मनुष्य, पत्र, पुष्प, वृक्ष, लता, संसार के जितने भी काम तुम्हें नज़र आते हैं, वे एक प्रकार से रमण ही तो है। उसी की शक्ति से है। हम भी उसके ज़रिए से खड़ा है। जिस प्रकार तुम्हारे शरीर में जिसके ज़रिए से रमण होता है, उसीके ज़रिए से तमाम सृष्टि में रमण हो रहा है। देखना, सुनना, बोलना, खाना-पीना, जो भी क्रिया हम करते हैं वह वास्तव में ईश्वर की ही क्रिया है।

ईश्वर शक्ति न हो तो न आंख देख सकती है, न कान सुन सकता है और न शरीर चल सकता है। जैसे प्रत्यक्ष में भी हम देखते हैं कि जो मुर्दा हो जाता है वह न हिल सकता है, न डोल सकता है, न बोल सकता है, मगर यह सब कुछ न करने के बावजूद भी उसके अंदर परिवर्तन है। रमण उसके अंदर फिर भी चल रहा है। क्योंकि, उसमें कालांतर में तबादला हो जाएगा। अगर उसके अंदर क्रिया न हो तो तबादला हो ही नहीं सकता, क्रिया हो

ही नहीं सकती। क्रिया होती है तो लाज़मी उसके अंदर भी रमण है, प्रत्यक्षत: उसमें भी रमण है। रमण को हम देख नहीं सकते, शरीर को हम देख सकते हैं।

जैसे कि मैंने पहले कहा कहा कि यह शरीर हमे नज़र आता है। मगर जिसके ज़रिए से यह शरीर नज़र आता है उसे हम देख नहीं सकता। शरीर खुद कुछ भी नहीं कर सकता। यदि शरीर खुद कुछ भी कर सकता होता तो हम शरीर को फूक (जला) देते हैं तो शरीर कुछ मनाह करता होता, मगर ऐसा कुछ देखने में नहीं आता। इससे सिद्ध होता है कि शरीर खुद कुछ नहीं कर रहा, एक पदार्थ ही इसके अंदर रमण कर रहा है जिसके ज़रिए से यह सब कुछ हो रहा है। यह सृष्टि भी एक किस्म का रमण ही है। यह चैतन्य शक्ति, जिसे हम परमात्मा कहते हैं, उसका यह रमण ही है समस्त सृष्टि। जितना भी क्रिया होती है यह सब उसी का रमण है। हम जो कुछ भी करते हैं, यह सब उसी के रमण से हो रहा है। वह न हो तो यह कुछ भी नहीं हो सकता।

इसी लिए रमण करने वाले को राम कहा। सब जगह के अंदर उसका रमण ही सृष्टि है, रमण ही है। यह सत्य है और कोई सत्य नहीं है! रमण को तमाशा भी कहा, रमण एक तमाशा ही है। यही एक सत्य है, बाकी कोई सत्य नहीं होता।

हम, सब काम दिल बहलाने के लिए करते हैं। सवेरे से शाम तक जितने भी काम हम करते हैं, दिल को बहलाने के लिए ही तो वह काम करते हैं और कुछ नहीं करते। दिल बहलाने के लिए ही काम करते हो। जन्म से मृत्यु तक जो भी हम काम करता है दिल को बहलाने के लिए ही काम करते हैं। दिल को खुश करने के लिए ही तो हम कर रहा है, और क्या कर रहा? और कुछ भी नहीं। सृष्टि में यह जो दिल को बहलाने की क्रिया हो रही है, यह भी तो रमण ही है, और क्या है? एक खेल है, रमण करना, खेल करना। खेल ही तो है यह सृष्टि। बिल्कुल रमण के लिए, दिल के रमाणे के लिए, हम कोशिश करते रहते हैं।

वास्तव में सचाई यह है कि जिन जिन साधनों/चीजों से हम दिल को संतुष्ट करने के लिए रात दिन कोशिश करते रहते हैं क्या संतुष्ट होते हैं? बिल्कुल संतुष्ट नहीं होते। क्योंकि, वह जानता है कि उसकी वजह से यह सब कुछ मिल रहा है। इसलिए उसे संतुष्टि नहीं मिल सकती। वास्तव में संतुष्टि तभी मिलेगी जब हमारे अंदर जो रमण कर रहा है उसे हम पहचान लें। तभी संतोष मिलेगा, तब तक मन संतुष्ट कभी भी नहीं हो सकता। हम उसे रमाने के लिए बहुत कोशिश करते हैं। मगर वह रम ही नहीं रहा। वह संतुष्ट नहीं

होगा। पर वो जिस के ज़रिए से यह रमण कर रहा है, उसे पहचान लेने से ही उसे संतुष्ट मिल सकती है।

वह परमात्मा है जो भिन्न भिन्न अनेक नामों से कहा जाता है। वास्तव में उसी की ही झलक है यह सारी सृष्टि। उसी की एक झलक-मात्र है। उसी झलक को तुम सृष्टि कहते हो। उसी का खेल है यह सृष्टि सारी की सारा। हम भी खेल हैं। मगर उस खेल को ही हम सत्य समझ लेते हैं। कोई काम लगातार करते रहें तो धीरे-धीरे हम लोगों को वह सत्य भासने लगता है। बार बार उसे दोहराते रहेंगे तो वह सत्य भासने लगता है। इसी तरह से यह सृष्टि निरंतर उसे दोहराने की वजह से, निरंतर उसके साथ रमण रहने की वजह से, यह हमें सत्य भासने लगती है।

ऐसा है, कि यह सत्य भासता है, मगर सत्य है नहीं। सत्य होने और सत्य भासने में बड़ा भारी फर्क होता है। क्योंकि, भासता है तो वह बनाकर भासता है, मगर जो सत्य है उसे बनाने की कोई ज़रूरत नहीं होती। उसे बनाने की ज़रूरत नहीं है, वह सत्य है। मगर जो सत्य भासता है वह सत्य नहीं होगा। सत्य इसीलिए भासता है कि उसके साथ लम्बे समय से सम्बंध होने की वजह से यह सत्य लगता है।

लम्बे अरसे से सम्बंध जब किसी वस्तु से होता है तो उसके साथ हमारा ममत्व होने लगता है। ममत्व के कारण ही यह हमें सत्य भासता है, भासता है मगर यह सत्य नहीं है। यह सत्य भासता है जब इस सृष्टि और इसके पदार्थों के अंदर हमारा ममत्व प्रबल हो जाता है। यदि वह ममत्व न हो तो यह सृष्टि कभी सत्य भास ही नहीं सकती। जैसे सपने के अंदर की स्वप्न-सृष्टि हमें सत्य भासती है, उस टाईम के अंदर वह बिल्कुल सत्य लगती है।

जागने पर उसका नामे-निशान भी नहीं रहता। हम कह देते हैं कि वह स्वप्न-मात्र बना और कुछ भी नहीं था। इसी तरह यह स्थूल-सृष्टि हमें सत्य भासती है कि जैसे स्वप्न-सृष्टि भासता है। यह भी बिल्कुल वैसे ही है जैसे स्वप्न-सृष्टि जागने पर वह स्वप्न-सृष्टि कुछ भी नहीं। इसी प्रकार ज्ञान के जागृत होने पर मनुष्य को यह सृष्टि जो भासता है, यह भी बिल्कुल स्वप्न-सृष्टि ही भासता है और कुछ नहीं।

स्वप्न के सिवा इसके अंदर कोई सचाई नहीं होती। सचाई तो वह क्षण भर के लिए प्रतीत होती है। प्रतीति होकर यह लय भी हो जाती है। यह तरंग है एक किस्म की। इसे

'संसार-सागर' कहा जाता है। सागर इसीलिये कहा है कि इसके अंदर तरंगे उठती हैं। हमारे अन्त:करण के अंदर भी तरंगें उठती हैं। ये तरंगे ही सृष्टि के विष्य समझने चाहिये।

जितने विष्य ये संसार के अंदर हैं या हम जिन जिन विषयों को प्राप्त करने की कोशिश करते है, जिसके लिये सारी उमर खर्च करते हैं। ये सारे विषय ही तरंगे होती हैं। वे तरंगें कोई सच थोड़े ही होती हैं। जल या पानी से भिन्न कोई तरंग नहीं होगा। मगर वास्तव में उसका कोई अस्तित्व नहीं। पानी है न। पानी होने के बावजूद तरंगें जब उठता है तो हमें तरंग प्रतीत होती है। तरंग भी तो जल होता है, जिस समय हवा का पानी के साथ सम्बंध होता है तो उसके अंदर तरंगें उठती हैं।

इसी तरह मन का विषय के साथ सम्बंध होने के कारण उस में कई प्रकार की तरंगें उठती हैं। उस तरंग को ही हम सत्य मानने लगता है। वास्तव में वह सत्य नहीं। पानी और तरंग में कोई फर्क नहीं। तरंग और पानी से भिन्न और कोई पानी नहीं होगा। पानी सच्चा है। इसी तरह अंतरंग में उठने वाली तरंगे सत्य नहीं। मगर इसके मूल में जो पानी अर्थात् आत्म-तत्व है, जो रमण कर रहा है, वह यथार्थ है, वही सत्य है। मगर उस पर हमारी दृष्टि नहीं जाती।

इस रहस्य को न जानने की वजह से हम इसे सत्य मान बैठता हैं। जब हम सत्य मान लेते हैं तो इसे कायम रखने के लिये कोशिश करते हैं। अर्थात् अपने से दूर रखने के लिये हम तैयार नहीं होते। मगर दूर होता नहीं है यह, क्योंकि प्रकृति का यह नियम है कि कोई भी चीज़ खेल यानी तमाशा होने की वजह से, गतिशील होने की वजह से कहीं भी अधिक देर तक ठहर नहीं सकता, मगर हम ठहराने की कोशिश क्यों करते हो? क्योंकि हमें वह सत्य भासता है। सत्य न होते हुये भी यह सत्य लग रहा है। सत्य भासने की वजह से, इसको ठहराने की कोशिश में हम उतने कामयाब नहीं होते।

कामयाब न होने की वजह से बड़ा भारी दुखी हो जाते हैं, चिल्लाते हैं, कहीं भी हमें कोई आधार नहीं मिलता। कहां जाएं, कुछ पता नहीं लगता। इसीलिये शास्त्रकारों ने हमारे सामने यह रखा कि ईश्वर ही ऐसा पदार्थ है जहां जाकर आराम से तुम बैठ सकते हो और जो तुम्हारी तरंगें हैं, यह तरंगें बिल्कुल लय हो जाएंगी। जिसकी यह तरंगें हैं उसे देखो।

वास्तव में यह जो आत्म-तत्व है, यह उस आत्म-तत्व की तरंगें हैं। यह खेल ही उसी का है। सृष्टि के अंदर जितनी भी क्रिया होती है, आत्म की तरंगें हैं। तरंगें सत्य

नहीं। आत्मा की तरंगें ही सृष्टि की शक्ल में खड़ी हुई हैं। क्योंकि, मन के साथ मिलकर जब वह हरकत में आ जाता है तो तरंगें पैदा होती हैं, वह तरंगें ही सृष्टि की शक्ल में हमारे सामने खड़ी हो जाती हैं। तरंगें को हमने सत्य मान लिया। क्या तरंग भी कभी सत्य होती है? इसी प्रकार यह सृष्टि भी कभी सत्य होता है?

मगर जब यह नज़र आता है, उस टाईम पर यह बिल्कुल सत्य होता है। वास्तव में यह सृष्टि क्या है? वह ईश्वर का खेल ही है। ईश्वर ही इसके अंदर रमण कर रहा है, रम रहा है। हर पदार्थ में उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते जागते वही रमण कर रहा है। जैसे जाग्रत अवस्था में ईश्वर रमण कर रहा है, उस समय वह स्थूल रूप में हमारे सामने आ जाता है, जब स्वप्न में वह रमण कर रहा है तो सूक्ष्म-सृष्टि के रूप में वह हमारे सामने आ जाता है। इसके बाद जब सुषुप्ति की अवस्था में हम चले जाते हैं तो वही रमण कर रहा है। ईश्वर रमण नहीं करता।

जब हम विषयों को छोड़ देते हैं। गहरी नींद में चले जाते हैं, तो वहां हमें बड़ा भारी आनंद का अनुभव होता है। नींद से उठकर हम कहते हैं कि बड़ा भारी आनंद से हम सोया। बड़ा भारी आनंद का अनुभव किया, मगर कुछ पता नहीं चलता। वह क्या है क्या नहीं । उस टाईम पर अनुभव हुआ ज़रुर! आनंद प्राप्त हुआ। मगर बाद में नहीं।

मगर यह आनंद है, क्योंकि आनंद होने की वजह से सब सुषुप्ति के अंदर जाने की इच्छा करते हैं। क्योंकि, सृष्टि की तरंगों में हम दुखी हो जाते हैं उनके अंदर गतिशीलता है। जैसे हवा के झौंके में फंसा हुआ ने नाव जो होता है, उसको कहीं भी ठिकाना नहीं मिलता। कभी इधर जाता है तो कभी उधर भटकता फिरता है। आखरकार में ठोकर खा कर टूट जाता है। इसी प्रकार हमारा अन्तःकरण या मन जो है, वह हवा या तरेंगों में फंसी हुई नाव की तरह, विषयों के फंदे में फंस कर इधर उधर भटकता फिरता है। यह विषय के पीछे भटक जाता है, ठोकरें खाता है। चैन प्राप्त नहीं होता।

आखर दुखी होकर टूट जाता है। टूटेगा, तो भी मन नहीं टूट सकता। नाव तो टूट जायेगा मगर मन नहीं टूटेगा। हज़ारों करोड़ों सालों से यह चल रहा है। यही अन्तःकरण हमारे साथ चलते आया है। जब से यह सृष्टि चला आ रहा है, उसी टाईम से यह अन्तःकरण भी हमारे साथ ही चला आ रहा है। मगर इसे शांति किसी भी सूरत में नसीब नहीं हुई। इसके बावजूद भी शांति की इच्छा उसके अंदर बनी रही है, इसलिए यह हमेशा चलता आया है। यह

चाहता है कि कहीं भी जाकर हमें शांति प्राप्त हो जाए। कोई किनारा मिल जाए। मगर किनारा नहीं मिल रहा। क्योंकि, तरंगें उठ रही हैं। तरंगें उठ रही हैं और ऊहापोह में उसे किनारे का कुछ पता नहीं चलता। सत्य का पता नहीं चलता।

अत: महात्माओं ऋषि लोगों ने कहा कि यह किनारा केवल परमात्मा ही हो रहा है। परमात्मा क्या है? वह जो इसके अंदर रमण कर रहा है। दीर्घ विचार कर के देखो कि यह मन यदि काम करवा रहा है तो इस मन के पीछे कौन काम कर रहा है? सोचना चाहिये। बुद्धि काम करती है। सो इस बुद्धि के पीछे कौन काम करता है? तो सुषुप्ति अवस्था में जब मन लय हो जाता है उस टाईम पर यह सृष्टि कुछ नहीं रहता, सृष्टि लय हो जाती है, बुद्धि भी लय हो जाती है, मन भी लय हो जाता है। फिर भी एक पदार्थ इसके अंदर छिपा होता है। क्योंकि आनंद ही वहां मिला हुआ था। तो इस से सिद्ध हुआ कि मन बुद्धि आदि के लय होने के बावजूद भी एक चीज़ वहां मौजूद था।

इसको हम आत्मा कहते हैं, वह आत्मतत्व है। वहां जाकर ही शांति मिलेगी। जब संसार सागर से हम दुखी हो जाते हैं तो हम किनारा ढूंढते सुषुप्ति के अंदर पहुंच जाते हैं। सुषुप्ति के अंदर पहुंचते ही हमें फौरन किनारा मिल जाता है। थोड़ा सा आराम वहां मिल जाता है। अत: थोड़ा शांति हमें मिल जाता है, मगर वह कायम नहीं रहता। क्योंकि, वह भी मायक होने की वजह से, मायक-पदार्थ कोई भी हो, वह कायम नहीं रहता। अत: नींद में मिला आनंद भी कायम नहीं रहता, वह सुषुप्ति-अवस्था का आनंद भी कायम नहीं रहता, वह भी अस्थिर है।

फिर हम जाग्रत के अंदर आ जाता है, जाग्रत के अंदर आकर फिर वही आनंद ढूंढते रहते हैं जिसे नींद में अनुभव किया था। जाग्रत के अंदर किसको ढूंढा? जिसको सुषुप्ति अवस्था में जाकर ढूंढा था, उसे ही जाग्रत अवस्था में ढूंढते रहे। यह नहीं समझे कि जाग्रत अवस्था में आते ही विषयों के फंदों में पड़ जाते हैं। इसी लिए मन सदैव भटकता ही रहता है। इसीलिए वह आनंद फिर यहां भी नहीं मिलता।

आखीरी मजबूर होकर मन ढूंढते-ढूंढते थक जाता है। थक जाने पर वह निद्रा-अवस्था की तरफ बढ़ने लग जाता है। बहुत थक जाता है और उसी आनंद को ढूंढते हुए दुखी हो जाता है पर कभी ठिकाना नहीं मिलता तो फिर वह खुद-बखुद सुषुप्ति की ओर बढ़ने लग जाता है। सुषुप्ति की तरफ जाकर फिर उसको वह आनंद मिल जाता है। फिर

कुछ समय वहां आराम करता है मगर वह भी कायम नहीं रहता। वह मायक है, मायक पदार्थों के साथ सम्बंध होने की वजह से कुछ देरी के बाद फिर बदल जाता है। इसी तरह फिर रहा है, कभी जाग्रत की ओर जाता है, कभी सुषुप्ति के अंदर जाता है। जाग्रत में नहीं मिलता तो सुषुप्ति में ढूंढता है। वह आनंद दोनों जगह मिलता नहीं, अतः ज़िंदगी भर वह चक्रों में पड़ा रहता है।

इसी चक्र में कोई किनारा नहीं मिला। आखीरी फिर इसका किनारा क्या होगा? फिर वह अनुभव करता है कि सुषुप्ति के भी पीछे जो काम कर रहा था, वहीं इसका आधार होगा। सुषुप्ति के अंदर मन बुद्धि के लय होने के बाद कारण शरीर को लय किया। लय होने के बाद एक बड़ा भारी आनंद था। उसके अंदर विकार-रहित अखण्ड-आनंद की प्राप्ति हुई, वही प्राप्ति स्थान होगा। अतः अन्तःकरण के अंदर जितने भी विकार हैं, उन विकारों को खत्म करो। विकारों को खत्म् किए बिना कभी भी आनंद प्राप्त नहीं हो सकता। जब तक विकार है आनंद नहीं मिल सकता।

वैसे वह विकार क्या है? यह एक किस्म का शरीर का फोडा फुंसी ही है। हमारे शरीर में कोई फोड़ा-फुंसी हो जाये तो जब तक फोड़ा-फुंसी है चैन नहीं मिलती। जब तक चीर-फाड़ कर उसके अंदर से गंदगी नहीं निकलती, चैन नहीं मिलती। इसी प्रकार मन के अंदर जितना भी यह विकार-रूपी फोड़ा-फुंसी उगा हुआ है, यह बेचैन करता है, रात दिन हमें चैन से बैठने नहीं देता। विकारों का फोड़ा होने की वजह से हम चैन से नहीं बैठ सकते।

वास्तव में यह रोग न हो तो विषयों में हमें दुख नहीं होना चाहिये। यदि वास्तव में यह रोग न हो तो विषयों में हमें दुख नहीं होगा। पर सृष्टि में हम जितने पदार्थों के साथ सम्बन्ध जोड़ते हैं आखिरी परिणाम इसका दुख ही निकलता है। जैसे शरीर के अंदर अहंकार कर बैठा, इसका परिणाम क्या होगा? इसका परिणाम दुख ही होगा। तब विकार पैदा हो जाएगा, रोग पैदा हो जाएगा।

यह शरीर ऐसे ही दुखी रहेगा। इससे विषयों की इच्छा मन में बनी रहती है। जिसे हम आनंद समझते हैं, असल में यह एक किस्म का रोग है। अन्तःकरण का फोडा है। यह फोड़ा जिस के शरीर में पैदा हो जाता है, उसे वह रात-दिन चैन से नहीं बैठने देता। बेकार दुखी होकर इधर उधर भटकता है। अखीरी मजबूर होकर सुषुप्ति का आश्रय लेता है, थोड़ी देर के लिए वहां सुख मिलता है, शांति मिलता है। अखण्ड आनंद वहां भी नहीं।

भटकता रहता है। फिर इस तरह भटकता भटकता टक्कर खाता घूमता ही रहता है, मगर शांति किसी भी सूरत में नहीं मिलता।

शांति न मिलने का मूल कारण है कि जहां शांति है वहां हम गया नहीं। जहां शांति है, उसे प्राप्त करने के लिए ढूंढने की कोशिश नहीं किया। भिन्न भिन्न पदार्थो में हम शांति को ढूंढता रहा। जहां शांति नहीं है, वहां शांति को ढूंढोगे तो कहां शांति मिलेगी वहां? वास्तव में शांति कहां छिपा हुआ है?

तुम्हारे अन्तःकरण के पीछे जो चैतन्य-शक्ति है वहीं उसका घर है, वहीं शांति का संस्थान होगा। उसी ओर सदा सभी सृष्टि संचरित है। वहीं वह रमण कर रहा है। सृष्टि के हर स्थान पर पशु पक्षी जीव जन्तु वृक्ष-लता, पुष्प, घास फूस जो कुछ भी तुम्हें प्रतीत होता है। वह सारे वहीं रमण कर रहा है। ऐसी कोई चीज़ नहीं, सिर्फ वह मुनष्य के अंदर नहीं, उसे वहां तक महदूद नहीं करना चाहिये। वह सर्वत्र है, व्यापक है, हर पदार्थ के अंदर।

उन सब पदार्थो में वह रमण कर रहा है जिनमें परिवर्तन होता है। घास बदलता है, वृक्ष बदलता है, आकाश, पृथ्वी, जो कुछ भी हमें संसार में नज़र आता है, वह बदल रहा है। बदलने की वजह से यह सिद्ध होता है कि उसमें वह न बदलने वाला पदार्थ रमण कर रहा है। उसके बदलने का सवाल ही नहीं पैदा होता।

भिन्न भिन्न शक्लें हमें दिखला देता है, पशु की शक्ल में वही खड़ा है। वृक्ष की शक्ल में वही खड़ा है, गाय की शक्ल में वह हो जाता है। ऐसी कोई शक्ल नहीं जिस रूप में परमात्मा नहीं, हर शक्ल के अंदर वही खड़ा होता है। जब इन्सान की दृष्टि बदल जाती है तो उसे मालूम पड़ता है। यह कैसा विचित्र तमाशा हो गया! हर जगह के अंदर वह परमात्मा ही परमात्मा खड़ा नज़र आता है और कोई चीज़ नहीं, जल लो, अग्नि लो, आकाश लो, पृथ्वी लो, कोई भी चीज़ हो जगह हो। हर शक्ल में वही तो खड़ा है। सर्वत्र यह सर्व-व्यापक ईश्वर है, जब यह व्यापक दृष्टि मिल जाती है, तब अखण्ड-शांति प्राप्त हो जाती है।

जब तक यह दृष्टि प्राप्त नहीं होती तब तक अखण्ड-शांति कभी भी नहीं मिल सकती। जिस अखण्ड-शांति के लिए हम रात-दिन कोशिश करते हैं वह शांति केवल उसी स्थान पर जाकर प्राप्त होगी। वहीं पर जीवन प्राप्त होगा। उसके इलावा और कहीं भी शांति नहीं मिल सकती।

वास्तव में, सब जीवों के हृदय के अंदर अखण्ड-शांति की इच्छा बराबर बनी रहती है। ऐसा कौन है कि जिसके मन में अखण्ड-शांति की इच्छा न हो? अखण्ड शांति की इच्छा होने के बावजूद भी उसे अखण्ड-शांति नसीब नहीं होती। क्योंकि, अखण्ड-शांति देने वाले और सब जगह बसे होने वाले परमात्मा को हम ने कभी देखा ही नहीं। उसे हम ने जब भी किसी एक स्थान पर महदूद किया तो यही बड़ी भारी गलती रही।

वह परमात्मा को ढूंढना है तो हर जगह के अंदर ढूंढो। जहां जहां हरकत है। जिस जिस जगह हरकत पैदा होती है। वह सारी हरकत परमात्मा की ही हरकत है। हमारे शरीर का कोई अंग देखो। सर्वत्र परमात्मा काम कर रहा है। हमारे कानों में हरकत है। वह परमात्मा वहीं काम कर रहा है। खून के अंदर हरकत है, वह वहीं काम कर रहा है। हमारी आंखों में भी उसी की हरकत है। आंखें देखता है तो वहां भी परमात्मा काम कर रहा है। नाक के अंदर परमात्मा, ज़बान के अंदर परमात्मा, चमड़े के अंदर परमात्मा है।

ऐसा कोई हिस्सा नज़र नहीं आता जहां परमात्मा न हो। हर चीज़ों पर, हर समय पर, हर मिंट पर, एक सैकण्ड भी नहीं होगा जिस समय वह रमण नहीं करता। हम तो सो जाता है। हमारा अन्तःकरण सो जाएगा मगर उसका रमण कभी भी बंद नहीं होगा। उसका रमण बंद हो जाए तो फिर हम जाग्रत के अंदर कभी आ ही नहीं सकते। सुषुप्ति के अंदर से हम वापिस जाग्रत के अंदर आ जाते हैं तो इससे सिद्ध होता है कि उसका रमण बदस्तूर जारी है।

जब से इस संसार में हरकत हुई, तब से उसकी हरकत चल रही है। उसकी हरकत कभी भी बंद नहीं होती। कभी भी एक सैकण्ड के लिए भी बंद नहीं होती। कभी भी एक सैकण्ड के लिए भी। अनवरत-रूप से चलने वाला जो परमात्मा वही यथार्थ है। उस पर दृष्टि डालना होगा। हमारी दृष्टि में विकार होने की वजह से पदार्थक-जगत या मायक-जगत को ऊपरी शक्ल को देखने का हम आदी है। हमारा आंख मोटी चीज़ों को देखने का आदी हो चुका है। इसी वजह से उस चैतन्य के ऊपर हमारी आंख नहीं जाती। हम मोटे पदार्थों के अंदर से अनुसंधान करते हैं।

जैसे साईंटिस्ट है, हमारी दृष्टि और इसकी दृष्टि में बड़ा भारी फर्क होगा। साईंटिस्ट किसी भी मोटी चीज़ को उठाता है तो उसके अंदर भिन्न भिन्न पदार्थों को देखने की कोशिश करेगा। मगर हमें वह मोटा पदार्थ ही नज़र आएगा। उसकी और हमारी दृष्टि में

बड़ा फर्क है। इसी प्रकार ईश्वर को देखने की दृष्टि जिसको मिल जाती है आम दृष्टि और उसकी दृष्टि में बड़ा भारी फर्क होता है। ईश्वर दृष्टि हमेशा उसके अंदर घुस जाएगा, किस के अंदर? जो उसके अंदर छिपा हुआ है। और हमारी दृष्टि कहां पड़ेगा? यह इस स्थूल शरीर पर पड़ेगी। हमारी आम दृष्टि मोटी चीज़ों पर, स्थूल वस्तुओं पर पड़ती है।

यह घास जो है, हम घास ही देखते हैं, मगर घास के अंदर छिपा हुआ दूध हमें थोड़ा ही नज़र आता है। दूध भिन्न भिन्न पदार्थों में छिपा हुआ नज़र नहीं आता। वास्तव में, दूध उस के अंदर है। उसके अंदर दूध भी है, विटामिन भी है, घी भी है। वह हमें नज़र नहीं आता क्योंकि वह दृष्टि में फर्क होता है। इसी प्रकार जब हमारी दृष्टि बदल जाती है, बदलने के बाद जो ईश्वर को सब जगह के अंदर देखने में। ईश्वर नज़र आने लग जाएगा। भले ही यह स्थूल हमें नज़र न आए। परमात्मा-द्रष्टा के लिए यह तमाम सृष्टि परमात्मा नज़र आएगा। जिनकी परमात्मा के अंदर वह दृष्टि नहीं पडती उसके लिए यह सृष्टि, सृष्टि की शक्ल में नज़र आती है। दोनों की नज़र में यही फर्क है। सृष्टि सृष्टि की शकल में किसको नज़र आता है? जिनकी नज़र सृष्टि के आधार पर नहीं पडती। सृष्टि परमात्मा की शक्ल में नज़र आया तो फिर यह सृष्टि परमात्मा है। परमात्मा की शक्ल में ही नज़र आएगा। इसमें नाम-रूप वगैरह जो है वह सारे उसे कल्पना नज़र आएगा, और कुछ भी नहीं।

कल्पना क्या हुई? एक बनाई हुई बात होती है। जैसे एक पिक्चर हम ने बना लिया वह कल्पना ही माना जाएगा। मुंदी (रिंग) जैसे सुनार ने बना लिया, वह कल्पना ही माना जाएगा। मगर वह मुंदी किससे बनाया? सोने से बनाया न। मगर सोने से बनाई होने के बावजूद हमें मुंदी नज़र आता है। सोना नज़र नहीं आएगा। क्योंकि, हमारा मन मुंदी का आदी हो चुका। मुंदी के हम आदी हो चुके मन को मुंदी सच भासने लगा। सच भासने की वजह से वह सोना हमें नज़र नहीं आता।

इसी प्रकार यह सृष्टि किन पदार्थों से बना है? परमात्म-तत्व से बना हुआ है। परमात्म-तत्व से बना होने के बावजूद भी हमें परमात्मा नज़र नहीं आता। मगर परमात्मा के सिवाय सृष्टि में कुछ भी नहीं है। यह सृष्टि की शकल में परमात्मा होने के बावजूद भी यह परमात्मा सृष्टि की शकल में कुछ भी नहीं है। यह एक विचित्र तमाशा है।

परमात्मा सृष्टि नहीं मगर परमात्मा के सिवाय सृष्टि का कोई अस्तित्व नहीं। यही खेल है उसका चल रहा। मगर परमात्म-तत्व पर आरोप नज़र आएगा। फिर उनको क्या

नज़र आएगा? यह सृष्टि एक किस्म का खेल नज़र आएगा। व्यास ने इसे 'लोकवत् लीला' कहा है। लोक वत जो नज़र आता है यह एक लीला-मात्र है। लोक-वत् अर्थात् लोक जैसे। लोक में जो कुछ भी नज़र आता है, वह एक लीला मात्र है। इन शब्दों से सिद्ध होता है कि वास्तव में यह सत्य सुत्य कुछ भी नहीं मगर वह हमें सत्य नज़र आता है। लोक-वत् लोक जैसा हो गया। और क्या? वह चैतन्य ही अकेला इस के अंदर, वह अखण्ड आनंद ही इसके अंदर छिपा हुआ है।

तो हम ने गहराई से अनुसंधान करके देखा कि क्या अखण्ड-आनंद इसके अंदर छिपा हुआ नहीं? यदि अखण्ड-आनंद इसके अंदर छिपा हुआ न हो तो हमें अखण्ड-आनन्द प्राप्त करने की इच्छा कहां से पैदा हो? जितने भी जीव हमें दिखाई देता है, उस आनंद की प्राप्ति करने में लगा रहता है। रात दिन तुम कोशिश करते हो, जन्म से मौत तक और मौत से जन्म तक, कोशिश हम कर रहे हैं। इसी उद्देश्य को मद्दे नज़र रख कर कर रहे हैं।

यह तुम्हें प्रत्यक्ष नज़र आएगा कि उसी आनंद को मद्दे नज़र रख कर ऐसा कर रहे हैं। वैसे आनंद ही है सृष्टि। सृष्टि जितनी भी है यह आनंद-मय है। उसमें दुख का नामो-निशान भी नहीं। मगर नामो-निशान यदि तुम्हें दुख नज़र आता है तो यह तुम्हारी कल्पना के कारण नज़र आता है। वास्तव में सृष्टि अखण्ड-आनंद से भरा हुआ है। वह आनंद-स्वरूप है। हमारे अंदर आनंद ही टिका हुआ है। आनंद के अंदर ही हम ठहर रहे हैं न। हम किसके अंदर रमण कर रहे हैं?

यह संसार के अंदर जितने भी जीव हैं किसके अंदर रमण कर रहे हैं? आनंद के अंदर ही रमण कर रहा है न! आनंद को हटाकर रमण करने के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं। तमाम सृष्टि के अंदर आनंद ही आनंद रमण कर रहा है, मगर हम भूल गया कि वास्तव में हम आनंद के अंदर ही रमण कर रहा है। आनंद ही रमण कर रहा है। यह एक विचित्र बात है! आनंद ही आनंद में रमण कर रहा है, और कुछ भी इसके अंदर न पैदा हुआ न हो ही सकता है।

मगर इससे भिन्न कुछ भी तुम्हें प्रतीत होता है तो यह मन की कल्पना ही कहा जाएगा। हम मन की कल्पना के अंदर जब आ जाते हैं, वह मिथ्या है सत्य नहीं होगा। क्योंकि वह कल्पना है न। आभास है। आभास आनंद के के ऊपर ही हम घूम रहे हैं, वास्तव

में यह सत्य नहीं है। वास्तव में सत्य, आनंद के अंदर हमने स्थिरता प्राप्ति नहीं किया। आनंद में स्थिरता प्राप्त न करने के बावजूद भी सच्चे आनंद के अंदर हम रम रहे हैं। केवल यही नहीं सच्चा आनंद खुद हम ही है।

यदि सच्चा आनंद हमारे अंदर है तो वह हम से भिन्न कभी भी नहीं हुआ न होगा। यदि हमसे भिन्न आनंद कुछ हुआ तो आनंद का अनुभव हमने किस से किया? आनंद को यदि हम अपने से भिन्न मान लें तो उस आनंद का किससे अनुभव किया? अनुभव यदि किया तो वह हमसे अभिन्न सिद्ध होगा। आनंद और हम एक हो गये। जब उसका अनुभव किया तो किसका अनुभव किया? आनंद ने आनंद का अनुभव किया? आनंद का अनुभव आनंद के ज़रिए से किसने किया? हमने किया और कोई कर ही नहीं सकता। और कौन कर सकता है?

आनंद का अनुभव आनंद ही कर सकता है। जब आनंद का हमने अनुभव किया तो आनंद ने ही उसका अनुभव किया। तो यह सृष्टि क्या हुआ? सृष्टि के अंदर जो कुछ है, सुख दुख है, उसका अनुभव हमने किया। वास्तव में यह सृष्टि आनंद-रूप है। तो किसके ज़रिए से किया, आनंद के ज़रिए से किया। यह सृष्टि सारी आनंद-रूप है, आनंद के इलावा किंचित-मात्र भी नहीं है। मगर अज्ञान की वजह से हमारी दृष्टि उस पर नहीं पड़ती है। अज्ञान के कारण हम भटक रहे हैं।

अज्ञान के अंदर भटकने के बावजूद, उसके अंदर भी हम उसके आनंद को ही ढूंढ रहे हैं। आनंद उसके अंदर छिपा हुआ है। आनंद को ही हमने अनुभव किया, आनंद से ही हम आनंद को अनुभव किया। इससे सिद्ध हुआ कि आनंद के अंदर हम चल रहे हैं, आनंद के इलावा और कुछ नहीं है। आनंद के अंदर ही हम चल रहे हैं आनंद ही ज़िंदगी है, आनंद ही मौत है, इसके इलावा हम कुछ भी सिद्ध नहीं होते।

मगर अज्ञान की वजह से हमारी दृष्टि वहां नहीं पड़ती है। वहां न पड़ने की वजह से हम बेकार में भटक रहे हैं। मगर शांति कहीं नहीं मिलती। यदि शांति प्राप्ति करना चाहते हो तो उस आनंद की ओर बढ़ने की कोशिश करो। बढ़ने की कोई जरूरत नहीं। जिससे तुम आनंद की ओर बढ़ने की कोशिश करते हो, उसमें भी आनंद छिपा हुआ है। उसके अंदर आनंद छिपा हुआ न हो तो तुम आनंद की तरफ बढ़ ही नहीं सकते।

आनंद की तरफ बढ़ने का यह मतलब नहीं समझना चाहिए, कि कहीं जाना है। यह तो एक कल्पना है। मन के अंदर कल्पना-मात्र पैदा होता है हम बढ़ रहा है, बढ़ रहा है, उठ रहा है, यह तो एक कलपना-मात्र है। वह जैसा है, वैसा ही है। जैसे आत्म-तत्व स्थिर है, स्थिर तत्व के अंदर कोई परिर्वतन नहीं होता। वह सदा स्थिर है। कभी चंचल नहीं होता। कभी गतीशील नहीं होता। अखंड है।

वास्तव में यथार्थ-दृष्टि से देखें तो वह हमारे पीछे छिपा हुआ है। इस दृष्टि की बाहरी शक्ल कुछ और है, पीछे कुछ और है। इस कागज़ की जो बाहरी शक्ल हमारे सामने है, इसकी वास्तविक शक्ल कुछ और है और अंदर कुछ और है। यह कल्पना होती है, मन की कल्पना होती है। इसके पीछे जो एक अखण्ड-आनंद छिपा हुआ है वह सत्य है।

कल्पित-पदार्थ हमेशा खण्डित होगा। खण्डित होगा। जितने भी खण्डित पदार्थ तुम्हें प्रतीत होंगे ये सारे कल्पित है। कल्पना ही इसका मूल कारण होगा और जो कल्पना-रहित अवस्था होती है, वह अखण्ड होगी। जहां कल्पना का कोई दखल नहीं होगा। कल्पना वहां जा कर मुड़ आता है। जैसे कोई अपना अस्तित्व खो बैठता है। खो बैठने के बाद क्या होगा? वह आनंद, अखण्ड-आनंद ही रहेगा। इसीलिए हमारा कहने का मतलब है कि ज़िंदगी को यदि सुधारना है और जैसे अभी प्रवचन के अंदर कहा कि ईश्वर रम रहा है, सब में उसके रमण को देखो कि किस तरह रमण कर रहा है।

यह सारा उसका रमण ही है, जो कुछ भी हरकत हमें मालूम पड़ती है, आंखों की हरकत, पैर की हरकत - ये सारी हरकत जहां कहीं भी प्रतीत होती है। वह सभी चैतन्य की ही हरकत है। चैतन्य के इलावा और कोई हरकत नहीं। वह सर्वथा अखण्ड है, वह चैतन्य ही इसको सिद्ध कर रहा है। चैतन्य ही सिद्ध करता है, चैतन्य न हो तो हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं। यदि चैतन्य हमारी नज़र में पड़ गया तो जड़ कुछ नहीं।

जैसे 'सांख्य' में प्रकुति और पुरूष दो सिद्ध नहीं होता। प्रकृति और पुरूष तभी तक दो नज़र आते हैं जब तक पुरूष में हमें स्थिरता प्राप्त नहीं होती। पुरूष में स्थिरता प्राप्त होते ही प्रकृति का अस्तित्व ही नहीं रहता, क्योंकि कल्पना के खत्म होते ही प्रकृति का अस्तित्व नहीं रहेगा। जब कल्पना खत्म हो जाती है तो कल्पना खत्म होने पर पुरूष ही पुरूष बाकी बचा रहेगा। पुरूष क्या है? 'पुरूषात् इति. पुरूष' :

जो पुरूष के अंदर सोता रहता है वह पुरूष है। यह शरीर भी एक पुर है। इसके अंदर जो है इसी को पुरूष कहते हैं। वह क्या ? वह आत्म–चैतन्य ही है। इसी प्रकार यह सृष्टि के अंदर एक बालू का कण ले लो, एक रेते का किनका ले लो वह भी एक पुर होगा। उसके अंदर भी पुरूष सोया होगा। ऐसा होना लाज़मी है। पुर के अंदर पुरूष लाज़मी है। पुर के अंदर जो सो रहा है वह निश्चय ही पुरूष होगा।

इसी प्रकार जब कोई भी पदार्थ तुम्हें नज़र आता है, यह सारा का सारा पुर होता है और जो इसमें सोया हुआ है वह पुरूष होगा। उस आत्म–चैतन्य को हटाकर, उस पुरूष को हटाकर कुछ भी नहीं होगा। उसका अस्तित्व कब तक सिद्ध होता है? जब तक उसमें पुरूष सोया हुआ होता है। इसी प्रकार यह घास का एक टुकड़ा ले लो, वह भी एक पुर होगा। यदि वह पुरूष को उसमें से बाहर निकाल लें तो पुर का कोई अर्थ नहीं।

सिद्ध हुआ कि जब तक पुरूष पर दृष्टि नहीं पड़ती तब तक प्रकृति और पुरूष हमें दो नज़र आते हैं। पुरूष के ऊपर दृष्टि पड़ते ही यह पुर खत्म हो जाएगा। फिर क्या होगा? पुरूष बचा रहेगा, पर दृष्टि पड़ता रहेगा, तब तक पुरूष भी हमें नज़र नहीं आएगा। पुरूष तभी नज़र आएगा, अगर पुरूष को देखने की दृष्टि सूक्ष्म होगा। ऐसे में स्थूल पदार्थ पर हमारी दृष्टि ही नहीं पड़ सकती, क्योंकि स्थूल को हम देखेगा ही नहीं। हमें सूक्ष्म को देखने से आनंद मिलेगा।

जिसका नज़र अत्यंत सूक्ष्म हो जावे, वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म चीज़ें देखने का अभ्यस्त हो जाएगा। तो तब पुरूष को देखेगा तो वह सूक्ष्मतर होता है अतः वह सूक्ष्म को ही देखेगा। इस तरह जब पुरूष को देखने का आदी हो जाता है तो उसकी नजर सूक्ष्म हो जाता है, उसे पुरूष नज़र आएगा, प्रकृति कभी भी नज़र नहीं आएगा। इसी लिए कहने का मतलब है यह जो हमारा बुद्धि है इसे अत्यंत सूक्षम बनाना होगा। तभी पुरूष पर हमारी दृष्टि पड़ेगी।

जब तक पुरूष नज़र नहीं आता तब तक हमारी ज़िंदगी अधूरा माना जाएगा। पुरूष प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है। जब तक पुरूष को नहीं देखते, देखना ही नहीं, जब तक उसमें स्थिरता प्राप्त नहीं करते, स्थिरता प्राप्त करना भी नहीं; क्योंकि वही है, उसके सिवा और कुछ भी नहीं। यह भाव ही आखिर जाकर सिद्ध होगा। उसके इलावा और कुछ भी चीज़ सृष्टि के अंदर स्थिर नहीं होता। यही स्थिति यथार्थ–स्थिति है। जब तक यह स्थिति नहीं मिलेगा, तब तक हमारी जिंदगी बिल्कुल अधूरा मानना होगा।

अधूरी ज़िंदगी के अंदर कभी भी चैन नहीं मिल सकता। यदि चैन चाहते हो तो पूर्ण ज़िंदगी बनाओ। पूर्ण ज़िंदगी तो पुरूष पर नज़र पाकर ही होगा, अन्यत्र जाकर कहीं भी नहीं बन सकता। अत: हमारा कहने का मतलब है कि हमेशा चैतन्य को देखने का अभ्यास करो। चलते फिरते, उठते बैठते, हरेक के अंदर उस चैतन्य को देखो, तभी जाकर हमारा कल्याण होगा। वह चैतन्य ही ईश्वर है और कोई पदार्थ नहीं। यह एक बड़ा भारी भजन होगा। हर जगह, हर सैकण्ड पर, हर चीज़ के अंदर आत्मा को, उस चैतन्य को देखने का अभ्यास जो होता इससे हमारा बुद्धि विकसित होता है।

यह जो पर्दा है, यह पर्दा हटेगा, गारंटी नहीं कि किस टाईम पर हटना है। इस पर्दे को हटाने की कोशिश करो। इस पर्दे के ऊपर ही यह सृष्टि नज़र आ रहा है। वह अचानक ही होगा, जब कभी भी होगा, अचानक ही होगा, इसी को ढूंढते जाओ। बस कोई पता नहीं कि किस टाइम पर यह पर्दा दूर हो जाए। इस लिए हमारा फर्ज़ है कि यह जो शक्ति हमारे अंदर छिपी है, इस शक्ति को परमात्म-तत्व की ओर बढ़ाओ, तभी जाकर कल्याण होगा।

– ॐ –